IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# कर्मयोग की अवधारणा एवं प्रारूप का विवेचनात्मक अध्ययन

[1]डा0 अनुजा रावत

[1] Head of the Dept., Department of Yoga and Naturopathy, H.N.B. Gharwal University, Shrinagar, Pauri Gharwal Uttrakhand.

**शोध–सार**

मानव चेतना के विकास में कर्मयोग की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, कर्मयोग मनुष्य की भावना के विकास का मूलाधार भी है। कर्मयोग में कर्मयोगी अपने समस्त कर्मों और उसके फल को भगवान के श्रीचरणों में अर्पण कर देता है। ईश्वर में निष्ठा रखकर आसक्ति को दूर करके सफलता या निष्फलता में समान रूप से रहकर कर्म करते रहना कर्मयोग कहलाता है। चेतना के विकास हेतु कर्मयोग प्रेम, विश्वास, श्रद्धा, समर्पण और सेवा है। कर्मयोग की पावन पुण्य परम्परा वेदों, पुराणों, श्रीमद्भगवद्गीता से होकर महान कर्मयोगियों श्रीअरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शिवानन्द, बालगंगाधर तिलक, आचार्य विनोबा भावे आदि से प्रकाशित हुई थी। इन सभी ने जीवन में एक ही सम्पदा कमाई है, एक ही तत्त्व का उपार्जन किया है और एक ही रस का रसास्वादन किया है, वह है–पीड़ित मानवता की सेवा। पीड़ित मानवता की सेवा करते हुए अपने स्वधर्म का पालन करना ही कर्मयोग है। योग के साधन के रूप में कर्म को माना गया है, कर्म के परिष्कार और परिमार्जन से जीवन साधना को पूर्ण करने का विधान कर्मयोग का मूल उद्देश्य है। इस संसार में रहने वाले सभी मनुष्य, कर्म करते हैं, लेकिन वे कर्म के रहस्य को नही जान पाते हैं तथा कर्मफल के प्रति आसक्ति रखते हैं। यही आसक्ति बन्धन का कारण बन जाती है, इन्हीं आसक्तियों से ऊपर उठकर कर्म करना आवश्यक है। आसक्ति रहित होकर कर्म करने से मोक्ष, समाधि व कैवल्य की प्राप्ति होती है, तथा समस्त कर्मबन्धन व कर्म संस्कार क्षीण हो जाते हैं। विभिन्न भारतीय ग्रन्थों यथा– श्रीमद्भगवद गीता, पतंजलि योग सूत्र, वेद,उपनिषद् इत्यादि में इससे सम्बंधित विशद् तथ्य प्राप्त होता है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने कर्मयोग की अवधारणा एवं स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

कूट–शब्द– कर्म, कर्मयोग, कर्मफल, चेतना, आसक्ति।

कर्म शब्द ''कृ'' धातु से बना है, इसका सामान्य अर्थ – करना, व्यापार या हलचल होता है। ''करना'' अर्थ में मनुष्य जो कुछ करता है वही उसका कर्म है। मनुष्य जो कुछ करता है–खाना,पीना,खेलना,रहना, बैठना,श्वासोच्छावास करना, हॅसना, रोना, सूँघना, देखना, बोलना, सुनना, चलना, देना–लेना, जगना, मारना,मनन

[1] Head of the Dept., Department of Yoga and Naturopathy, H.N.B. Gharwal University, Shrinagar, Pauri Gharwal Uttrakhand.

व अध्ययन करना, आज्ञा और निषेध करना, दान–देना, यज्ञ–योग करना, खेती–व्यापार और धंधा करना, इच्छा करना, निश्चय करना, चुप रहना इत्यादि से सब कर्म है। कर्म के सन्दर्भ में विभिन्न

**महर्षि कणाद के अनुसार** – ''कर्म वह है जो द्रव्य के आश्रित हो, गुण न हो और संयोग तथा विभाग में अनपेक्ष कारण हो ''।

**अन्नभटट् के अनुसार** – ''कर्म वह है जो संयोग तथा विभाग में अनपेक्ष कारण हो। संयोग तो न हो परंतु संयोग का समवायि कारण अवश्य हो''। जीवन शाश्वत, अविरल चेतना का प्रवाह है। शरीर के द्वारा ही जीवन की अभिव्यक्ति होती है और यही अभिव्यक्ति कर्म है। मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना नही रह सकता है। कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। व्यक्ति दो कारणों से कर्म में प्रवृत्त होता है–1, कुछ पाने का लोभ तथा –2, कुछ खाने का भय। इस प्रकार से कर्म में प्रवृत्त होना कर्म की अपूर्णता है। तथा यह कर्म कीनिम्न अवस्था है। लेकिन ज्ञान में होने वाले कर्मो का प्रेरक तत्व स्वयं परमात्मा है। ऐसी अवस्था में कर्त्ता लोभ व भय से प्रेरित नही होता है। बल्कि वह परमात्मा के लिये कर्म करता है तथा अपने आपको परमात्मा में समाहित कर देता है।

**योग का अर्थ एवं परिभाषा** – योग एक प्राचीन पद्धति है इसमें विभिन्न पद्धतियों के माध्यम से जीवन के परम उददेश्य को प्राप्त करने हेतु प्रयास किया जाता है। योग एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा मनुष्य मोक्ष, समाधि व कैवल्य को प्राप्त कर सकता है।

योग के विभिन्न सम्प्रदाय है। लेकिन सभी का उददेश्य एक ही है। विभिन्न ग्रन्थों में योग की परिभाषाऐं निम्न प्रकार से दी गयी है –

**योगश्चितवृत्तिनिरोधः। योग सूत्र 1/2**, – चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध योग है। चित्तवृत्तियों के निरोध होने से ऐसी अवस्था आती है जिसमें चित्त, शांत, व्यवस्थित, निश्चल और एकाग्र हो जाता है। और यही अवस्था योग कहलाता है।

**योगस्थः कुरू कर्माणि संगं व्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध सिद्धयोः समों भूत्वा समत्वं योग उच्चये।। गीता – 2/48** अर्थात जब अशान्त व दुखित मन, जब सुव्यवस्थित होकर शान्त व निर्द्वन्द्वतापूर्वक समाधि को प्राप्त होता है उसे ही योग कहते है।

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सृकृतदुष्कृते। तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। गीता 2/50 अर्थात** समबुद्धियुक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है। अर्थात उनसे मुक्त हो जाता है। समत्तरूप योग ही कर्मो मे कुशलता है। तथा कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

**तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योग सज्ज्ञितम्**।। गीता 6/23, अर्थात दुख के संयोग से वियोग हो जाना योग है।

**मैत्रीय उपनिषद में कहा गया है** – योग वह अवस्था है जिसमें मन इन्द्रियों और प्राणों की एकता हो जाती है।

**कठोपनिषद में कहा गया है** – ''पंच इन्द्रियों,मन एवं बुद्धि की स्थिर अवस्था को योग कहते है।'' इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थों में अलग–अलग प्रकार से योग को परिभाषित किया गया है।

**कर्मयोग की अवधारणा** – अनासक्त भाव से कर्म करना **'कर्म योग''** है। कर्म ही पूजा है कर्म अर्थात कार्य करना। यह कार्य शारीरिक व मानसिक रूप से हो सकता है। हम जो करते है, सोचते है या कहते है। इस प्रकार सबका प्रभाव बनता है जो एक निश्चित समय पर प्रतिफल के रूप में मिलता है और जो प्रतिफल मिलता है उसे हम भाग्य कहते है जो पूर्व कर्म होते है वे संस्कार के रूप में एकत्र होते है और यह संस्कार हमें कर्मफल के रूप में प्राप्त होता है। यदि हम वर्तमान समय में फलों की आसक्ति से रहित होकर कर्म करते है तो चित्त में संस्कार नही होते है। तथा संस्कारों के दग्धबीज होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कर्मयोग के द्वारा मोक्ष सम्भव होता है। कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है तथा कर्म के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है कर्म करने की इस प्रवृत्ति के सम्बंध में गीता में कहा गया है – **नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।** गीता 3/5। इस प्रकार कर्म सभी मानव का प्रकृतिजनित गुण होता है मनुष्य को न चाहते हुए भी कुछ न कुछ कर्म करते होते है। इस प्रकार कर्म बन्धन का कारण होता है। कर्मयोग की साधना में अभ्यासरत साधक धीरे–धीरे सभी कर्मो को भगवान को अर्पित करने लगता है और साधक में भक्तिभाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में साधक जो भी कर्म करता है वह परमात्मा को अर्पित करते हुए करता है। साधक अपनी श्रद्धा बनाए रखते हुए उत्साह के साथ कर्म करता है। इस सम्बंध में गीता में कहा गया है – **यत्करोषि यदन्नासि यज्जुद्येषि ददासि यत। यत्तपस्यासि कौन्तेय तत्कुरूएव मदर्पणम्**।। गीता 9/27 अर्थात हम जो भी कर्म करते है, जो खाते है, जो हवन करते है, जो दानादि देते है, जो तप करते है, वह उस परमात्मा को अर्पण करना चाहिए। ईश्वर के प्रति समर्पित कर्म व उसके फल सम्बधं को बताते हुए कहा गया है – **ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्यपत्र मिवाम्भसा।।** गीता 5/11 अर्थात ब्रह्म को अनासक्ति पूर्वक कर्म करने वाला उसके फल से वैसे ही अलग रहता है जैसे जल में कमल का पत्ता। कर्मयोग की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने पर स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म किये जा रहे है। उन सबको करने वाले ईश्वर ही है। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बन्धन से मुक्त रहता है उसके द्वारा किये गए कर्म में किसी भी प्रकार के संस्कार उत्पन्न नही होते हैं इस प्रकार से कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते है।

कर्मयोग की साधना से साधक के लौकिक व पारमार्थिक दोनों पक्षों का उत्थान होता है। कर्म योग के मार्ग से ही साधक गृहस्थ जीवनयापन करते हुए भी साधना कर सकता है, तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

**कर्म के भेद तथा विभिन्न ग्रन्थों व शास्त्रों में कर्मयोग का स्वरूप** – कर्म का विभाजन अलग–अलग शास्त्रों में अलग–अलगप्रकार से किया गया है। वेदों में कर्म मुख्य रूपसे दो है –

**विहित कर्म** – विहित कर्म अर्थात अच्छे कर्म, सुकृत कर्म। विहित कर्म के भी 4 भेद है –

i- **नित्य कर्म** – नित्य कर्म का अर्थ है प्रतिदिन किये जाने वाले कर्म जैसे – सन्ध्या,पूजा, अर्चना, वन्दना इत्यादि।

ii- **नैमित्तिक कर्म** – जो कर्म किसी प्रायोजन के लिए किऐ जाते है उदाहरण के लिये किसी त्यौहार या पर्व आ जाने पर अनुष्ठान किसी की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि जैसे पुत्रक के जन्म होने पर जातकर्म, बडे होने पर यज्ञोपवीत इत्यादि।

iii- **काम्य कर्म** – ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिये किये जाते है जैसे नौकरी प्राप्ति के लिए, पुत्र की प्राप्ति के लिये, यज्ञ,वर्षा को रोकने के लिए हवन या अनुष्ठान, पुण्यफल की प्राप्ति की इत्यादि ये काम्य कर्म है।

iv-**प्रायश्चित कर्म** – अगर व्यक्ति से कोई अनैतिक कार्य या पाप हो जाये तो उसके प्रायश्चित के लिये जो कर्म करता है।उसे प्रायश्चित कर्म कहते है। तथा जन्मजन्मान्तरों के पापों का क्षय करने के लिये तपश्चर्या इत्यादि प्रायश्चित कर्म कहलाते है।

**निषिद्ध कर्म** – निषिद्ध कर्म अर्थात जो कर्म शास्त्र के अनुकूल नही है। चोरी, हिंसा, झूठ, व्याधिचार इत्यादि कर्म निषिद्ध कर्म है। जब हम कोई कर्म करते हैं तब हमारा मन (आत्म, तत्व) उसे करने या न करने के लिए प्रेरित करता है। कोई व्यक्ति उस आत्मा की आवाज को सुनकर कर्म करता है और कोई अनसुना करता है। अगर आत्मा की आवाज अर्थात ईश्वर का भय न करते हुए जो कर्म करते है वह निषिद्ध कर्म है। इस प्रकार वेदों में 2 प्रकार के कर्म का वर्णन है

**श्रीमदभगवद् गीता में वर्णित कर्मयोग** – श्रीमदभागवत गीता में कर्मयोग का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। गीता के तृतीय अध्याय का नाम कर्मयोग नामक अध्याय है इस अध्याय में श्रीकृष्ण, अर्जुन को कर्मयोग का संदेश देते है।

**जब अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछत है कि हे जर्नादन** – जब आपको कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है। तो मुझे इस भयंकर कर्म में क्योंकि लगा रहे है?

**ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन। तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।** 3/11 तब भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि इस संसार में दो प्रकार की निष्ठा है जिसमें श्रीकृष्ण सांख्योग कीनिष्ठा तो ज्ञानयोग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है।

**लोकेऽस्मिन्द्विधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन सगंरव्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।** 3/3, भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि जो पुरूष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है। वही श्रेष्ठ है।

**यस्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते 3/6।।** श्रीकृष्ण कहते है कि है अर्जुन! तू शास्त्रविहित कर्मो को कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नही सिद्ध होगा।

**नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायों ह्यकर्मणः। शरीर यात्राणि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मण**ः 3/8।। श्रीकृष्ण श्रेष्ठ कर्म के विषय में कहते है कि यज्ञ से निमित्त किये जाने वाले कर्मो से अतिरिक्त दूसरों में लगा हुआ ही यह मनुष्य समुदाय कर्मो से बँधता है। इसलिये हे अर्जुन! तू आसक्ति रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभॉति कर्तव्यकर्म कर।

**यज्ञार्थत्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।।** 3/9, श्रीकृष्ण कहते है कि आसक्ति रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भलीभाँति करना चाहिये क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

**तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचन्व। असक्तो ह्यचरन्कर्म परमाप्नोति पुरूषः।।** 6/19, श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि – हे अर्जुन! मुझ अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्तद्वारा सम्पूर्ण कर्मो की मुझमें अर्पण करके आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध कर।

**मयि सर्वाणि कर्माणि सन्नयस्याध्यात्मचेतस। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धयस्व विगतज्वरः।।** 3/30, इसके पश्चात श्रीकृष्ण कहते है कि – जो कोई मनुष्य दोषदृष्टि से रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मत का सदा अनुसरण करते है वे भी सम्पूर्ण कर्मो से छूट जाते है।

**ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्माभिः।।** 3/31। इस प्रकार श्रीकृष्ण सम्पूर्ण कर्मो को अर्पित करने की बात कहते है। क्योंकि जब हम कर्मफल को ईश्वर को समर्पित कर देते है। तो सम्पूर्ण कर्म बंन्धन से मुक्त हो जाते है।

**श्रीमदभगवगीता के अनुसार कर्म के प्रकार** – गीता में कर्म की विस्तार से चर्चा की गयी है एवं कर्म की गति गहन बतलायी गयी है। **''गहना कर्मणो गति''** कृष्ण कहते है कि कर्म को ही जानना चाहिये, अकर्म को भी जाननाचाहिये। इस प्रकार गीता में कर्म के जिन प्रकारों की चर्चा आयी है वे है –

- **कर्म, अकर्म, विकर्म**
- **आसक्त एवं अनासक्त कर्म**
- **निष्काम कर्म**
- **नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म**

वेद विहित कार्य को कर्म कहते है अतः गीता के अनुसार शास्त्रविहित कर्मो को ही कर्म कहा जाता है। **अकर्म** का तात्पर्य है कर्म का अभाव यानी तुष्णीभाव। इस तुष्णीभाव को ही **अकर्म** कहा गया है। और **विकर्म** का अभिप्राय है **''विगतः कर्मः यस्य स विकर्मः''** जो विहित कर्म निकल गया हो अर्थात जो शास्त्र विहित कर्म नही है। अविहित यानी निषिद्ध(पाप) कर्म है वही विकर्म है इस प्रकार से गीता में तीन प्रकार के कर्म बताये गये है। यदि कर्ता की कर्मफल में आसक्ति है तो वह आसक्त कर्म यदि कर्मफल में आसक्ति नही है। तथा निष्काम भाव से जो कर्म करते है उसे अनासक्त या **निष्काम कर्म** कहा जाता है। प्रतिदिन किये जाने वाले कर्म **नित्य कर्म** कहलाते है तथा जो कर्म किसी प्रयोजन से किये जाते है वे **नैमित्तिक कर्म** कहलाते है तथा व्यक्ति से कोई अनैतिक कार्य या पाप हो जाये तो उसे प्रायश्चित कर्म कहते है तथा ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिये किये जाते है वे **काम्य कर्म** कहलाते है। इस प्रकार श्रीमदभगवतगीता में कर्मो का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है इसमें बन्धन में बाँधने वाले तथा बन्धन से मुक्त करने वाले कर्मो के विषय में विस्तार से बताया गया है। अतः गीता कर्मयोग का मुख्य कारण है।

**उपनिषदों में कर्मयोग** – उपनिषद भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रमुख अंग है। कुल 108 उपनिषदों में से 10 को मुख्य उपनिषद माना गया है। इन उपनिषदों में कम तथा कर्मयोग के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। ईशोवास्योंपनिषद जो शुक्लयजुर्वेद काण्वशाखीय संहिता का चालीसावॉ अध्याय है इसमें कर्मनिष्ठा की अवधारणा दी गयी है तथा कहा गया है कि–

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत् समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।** 2।। ईशावास्योपनिषद। अर्थात इस जगत में शास्त्रनियत कर्मो को करते हुए ही सौ वर्षो तक जीने की इच्छा करनी चाहिये इस प्रकार त्याग भाग से, परमेश्वर के लिये किये जाने वाले कर्म तुझ मनुष्य में लिप्त नही होंगे इससे भिन्न अन्य कोई प्रकार अर्थात मार्ग नही है, जिससे कि मनुष्य कर्मबंन्धन से मुक्त हो सके। मुण्डकोपनिषद के तृतीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड में सकाम व निष्काम कर्म का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें निष्कामभाव की प्रशंसा व सकामभाव की

निन्दा की गयी है – **स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहिंत भाति शुभ्रम। उपासते पुरूषं ये ह्यप्तकामा स्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्नि धीराः** 3/3/1।। मुण्डकोपनिषद। अर्थात वह निष्काम भाव वाला पुरूष इस परम विशुद्ध प्रकाश मान ब्रह्मधाम को जान लेता है जिसमें सम्पूर्ण जगत स्थित हुआ प्रतीत होता है जो भी कोई निष्काम साधक परमपुरूष की उपासना करते है वे बुद्धिमा, राजोवीर्य इस शरीर को अतिक्रमण कर जाते है। मुण्डकोपनिषद में ही जो निष्काम भाव से कर्म करते है उन्हें ब्रह्मविद्या का अधिकारी माना गया है – **क्रियावन्तः शोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुहृत एकर्षि ज्ञद्धयन्तः। तेषामेवैता ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवधैस्तु चीर्णम्। 3/2/10।।** **मुण्डकोपनिषद।**

अर्थात जो निष्काम भाव से कर्म करने वाले वेद के अर्थ के ज्ञाता तथा ब्रह्म के उपासक है और श्रद्धा रखते हुए स्वयं एकर्षि नाम वाले प्रज्वलित अग्नि मे नियमानुसार हवन करत है तथा जिन्होने विधिपूर्वक सर्वश्रेष्ठ व्रत का पालन किया है उन्हीं को यह ब्रह्मविद्या जानने योग्य है।

इस प्रकार उपनिषदों में जो निष्काम भाव से कर्म करते है उनको श्रेष्ठ बताया गया है तथा उन्ही को ब्रह्मविद्या का अधिकारी बताया है तथा जो फलों में आसक्त होकर कर्म करते है। वे निम्न कोटि के व्यक्ति होते है तथा वे ब्रह्म के अधिकारी नही होता है। अतः उपनिषदों के अनुसार निष्काम भाव से कर्म करना ही कर्मयोग है।

**कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्** ।। यो.द. 4/7। अर्थात योगी का कर्म पाप–पुण्य से रहित होता है तथा अन्य अयोगी व्यक्तियों का कर्म पुण्यात्मक अपुण्यात्मक व पुण्य–पापात्मक होता है।

**योगदर्शन में वर्णित कर्म का स्वरूप** – योग दर्शन महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणित एक मूख्य आस्तिक दर्शन है योगदर्शन के चतुर्थ पाद (कैवल्यपाद) में कर्म के विषय में वर्णन मिलता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार कर्म चार प्रकार के होते है –

1. **शुक्ल कर्म** – शुक्ल कर्म वे कर्म कहलाते है जो कि दूसरों को किसी भी प्रकार की पीड़ा पहुँचाये बिना ही हमको सुख–शान्ति प्रदान करने वाले होते है। ये कार्य केवल मन के द्वारा किये जाते है। यथा– अहिंसा, तप, स्वाध्याय,ध्यान आदि। इन्हीं कर्मो की ''पुण्य कर्म'' भी कहा जाता है। कर्ता को इन कर्मो का सुख रूप फल मिलता है।
2. **कृष्ण कर्म** – कृष्ण कर्म वे कर्म है जो कि दूसरों को पीड़ा प्रदान करते है तथा आत्यन्तिक रूप से हमारे चित्त को भी अशान्त करने वाले होते है। यथा – हिंसा, चोरी,व्याधिचार आदि। इन्हीं कर्मो को अपुण्य कर्म व पाप कर्म भी कहा जाता है। कर्ता को इन कर्मो का दुख रूप फल मिलता है।
3. **शुक्लकृष्ण कर्म** – शुक्लकृष्ण कर्म वे कर्म कहलाते है जो किसी को सुख पहुँचाने वाले हो और किन्हीं को पीड़ा पहुॅचाने वाले हो। इन कर्मो का अनुष्ठान शरीर व वाणी के द्वारा किया जाता है। यथा– खेती का काम, पशुपालन का काम तथा अन्य सभी प्रकार के व्यापार कार्य इन्ही कर्मो को

**''पुण्य–पापात्मक''** कर्म कहा जाता है। तथा इन्हें ही मिश्रित कर्म कहा जाता है। कर्ता को इन कर्मो के सुखात्मक अंश का स्वरूप तथा दुखात्मक अंश का दुख रूप फल प्राप्त होता है।

4. **अशुक्लाकृष्ण कर्म** – जीवन्मुक्त योगी पुरूषों के कर्म **''अशुक्लाकृष्ण''** या **''अपुण्यापापात्मक''** कहते है। कर्मो के पापात्मक न होने से क्योंकि पापात्मक कर्मो का योगी स्वेच्छा से त्याग कर देता है। योगी के कर्मो के लिए **''अपुण्यात्मक''** शब्द भी विशेषण के रूप में प्रयोग किया गया है, कर्मो के सर्वथा पुण्य सहश न होने से क्योंकि योगी फल की आकॉक्षा से मुक्त होकर कर्म करता है।

उपर्युक्त कर्मो के विषय में महर्षि पतंजलि कहते है –

**ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्** ।4/8।।यो.दर्शन। अर्थात उपर्युक्त त्रिविध कर्मो से उन कर्मो के विपाक के अनुरूप ही वासनाओं का प्रकटीकरण होता है।

**ततः क्लेश कर्मनिवृत्ति।** 4/30 यो.दर्शन। अर्थात उपर्युक्त त्रिविध समाधि (समाधि की विशिष्ट अवस्था) की प्राप्ति होती है तथा क्लेश व कर्माशय की समाप्ति हो जाती है।

**तदासर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्।** 4/31। यो.दर्शन। अर्थात अविद्या आदि क्लेशों तथा कर्माशय की निवृत्ति हो जाने पर सब आवरणों और मलों से रहित हुए चित्र के ज्ञानात्मक प्रकाश के असीम हो जाने से योगी पुरूष के लिये ज्ञेय–विषय अत्यल्प रह जाता है।

**ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्।** 4/32 यो.दर्शन धर्ममेघ समाधि द्वारा क्लेशों व कर्माशय की निवृत्ति हो जाने के बाद कृतकार्य हुए सत्व आदि गुणों के परिणाम क्रम की भी समाप्ति हो जाती है।

**पुरूषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति।** 4/34 यो.द.। पुरूष के प्रयोजन से विरत हुए सत्व–रज–तम गुणों का अपने कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाना (कैवल्य) है। अथवा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित चेतनाशक्ति की अवस्था कैवल्यावस्था है। इस प्रकार कर्माशय जब समाप्त होता है तब समस्त संस्कार नष्ट हो जाते है तथा कैवल्य की प्राप्ति होती है और यही कर्मयोग का लक्ष्य भी है।

**वेदान्त में वर्णित कर्म का स्वरूप** – वेदान्त दर्शन में कर्म के तीन भेद बताये गये है –

1.**संचित कर्म** – संचित कर्म का अर्थ है कि पूर्वजन्म में हमने जो अनेकों शरीर धारण किये है उन शरीरों में हमने जो कर्म किये वो संचित कर्म कहलाते है। हमारे जन्म जन्मान्तरों के संस्कार चित्त में संचित पड़े रहते है। इन्हीं कर्म संस्कारों के समूहों को संचित कर्म कहते है।

2.**प्रारब्ध कर्म** – प्रारब्ध कर्म ऐसे कर्म है जो संचित कर्मो में अति प्रबल है। ये कर्म इतने बलवान होते है कि कर्मो का फल भोगने के लिये अगले जन्म में जाते है। हमारे सुख–दुख की उत्पत्ति प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही होती है।

3.**क्रियमान कर्म** – इन्हें आगामी कर्म के भी नाम से जाना जाता है। आगामी अर्थात आगे किये जाने वाले कर्म, व्यक्ति ने जिन कर्मो का आरम्भ अभी भी किया है। वही आगामी कर्म है जो मनुष्य के अधीन है इनको चाहे तो हम बना सकते है चाहे तो बिगाड भी सकते है। इस प्रकार वेदान्त में कर्म के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है।

**पुराणों में वर्णित कर्म का स्वरूप** – पुराणों में कर्मयोग के विषय में विशद् वर्णन प्राप्त होता है। इनमें कर्म के विषय मं भलीभॉति बताया गया है। भगवदपुराण के अनुयसार कहा गया है कि– **कर्मण्येवाधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोंऽस्वकर्मणि। 2/47। श्रीमदभगवतगीता। कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धयाऽत्मना वानुसृतस्वभावात्। करोति यद् यत् सकलं परस्मै। नारायणेति समर्पयेत्तत्।। 11/2/36 भागवदपुराण।**

अर्थात भक्ति की प्रधानता होने के कारण यह कर्म समर्पण की भावना प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती है। इसके अनुसार जो मनुष्य स्वयं को और समस्त कर्मो को भगवान को अर्पित कर देता है। उससे बढ़कर कोई दूसरा प्राणी नही है। कर्मो के द्वारा कर्म फल एवं कर्म वासनाओं का परिहार करने का यही साधु उपाय है कि सब यज्ञादि कर्मो द्वारा विष्णु भगवान की ही श्रद्धापूर्वक आराधना करनी चाहिये।

**नारायण पुराण के अनुसार –**

**कर्मयोगं विना नृणां ज्ञानयोगो न सिध्यति। कर्मयोग रतस्माच्छ्द्धया हरिमर्चयेत।। 1/33/22 नारद पुराण** अर्थात मनुष्यों को कर्मयोग के बिना ज्ञानयोग की सिद्धि नही होती। इसीलिए कर्मयोग में लीन रहकर श्रद्धापूर्वक हरि की उपासना करनी चाहिए। इसी प्रकार अग्निपुराण में कहा गया है – **ध्यानेनात्मानि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।** 381/34 अग्निपुराण। अर्थात सम्पूर्ण जगत के परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कुछ लोग मन के द्वारा अन्तःकरण में करते है, कुछ लोग ज्ञानयोग के द्वारा तथा कुछ लोग कर्मयोग के द्वारा साक्षात्कार अपने अन्तःकरण में करते है। कुर्मपुराण के अनुसार कर्मयोग को श्रेष्ठ बताया गया है– **वर्तध्वं तत्प्रसादेन कर्मयौगेन शंकरम्। पूजयध्वं महादेवं गोपतिं भूतिभूषणम्।** 2/11/135 कूर्मपुराण। अर्थात कर्मयोग, ज्ञानयोग से हजारों गुना अधिक प्रशस्त है। क्योंकि ज्ञानयोग की सिद्धि कर्मयोग के द्वारा ही होती है। ब्रह्मा भगवान भी कर्मयोग से ही उत्पन्न होते है कर्म के बिना तो ज्ञान की सत्ता ही नही है। – **ज्ञानयोगसहस्त्रादि कर्मयोगः प्रशस्यते। कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात् तत्परमं पदम। कर्मज्ञानोंद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानकर्मणः।।** 52/5,6।। मत्स्यपुराण। देवी भागवदपुराण में कर्मयोग के विषय में कहा गया है – **परमेशार्पणं**

**कर्म पापसंक्षालनाय च। वेदोक्ततत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयाऽनिशम्।।** 7/37/8।। देवीभागवतपुराण। अर्थात जो मनुष्य अपना कर्म परमात्मा का अर्पण कर देता है। पाप को धोने के बहाने कर्म करता है। वेद की आज्ञा के अनुसार उसे निरंतर सत्कर्म में लगे वही कर्मयोगी है। इस पुराणो में योग तथा कर्मयोग के मूल स्वरूप के विषय में वर्णन प्राप्त होता है।

**स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कर्मयोग**–

स्वामी विवेकानन्द की प्रसिद्ध पुस्तक **"कर्मयोग"** उनके द्वारा अमेरिका में दिसम्बर 1895 से जनवरी 1896 के बीच दिये गए व्याख्यानों का संकलन है। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार कर्मयोग वस्तुतः निस्वार्थपरता और सत्कर्म के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की एक विशिष्ट प्रणाली है। इनके अनुसार ''निस्वार्थ भाव से लोकोपकार के लिये अपना कर्तव्य सर्वश्रेष्ठ तरीके से करना ही कर्मयोग है'' यदि संसार की भीड में भी हमारा मन कर्मो में तीव्र रूप से लगा हुआ है तो वह कर्मयोग का आदर्श है। स्वामी जी के अनुसार हमें निरंतर कर्म करना चाहिये परंतु कर्मो के बन्धन में नही पड़ना चाहिये। अर्थात अनासक्त भाव से निरंतर कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने कर्म के रहस्य को भली भॉति समझाया है।

**कर्मयोग का महत्व** – कर्मयोग हर काल, परिस्थिति तथा जीवन के हर क्षेत्र में अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग, एक प्रकार का श्रेष्ठ योग है। जो कर्म के गूढ रहस्य का प्रतिपादन करता है। यह कर्मबन्धन से ऊपर उठकर भव सागर से पार होने का साधन है।

कर्मयोग हर सृष्टि से महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में कर्मयोग जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। यह समाज व राष्ट्र के उत्थान के लिये भी अत्यन्त अनिवार्य है। हमेशा मनुष्य आलस्य तथा निस्कर्मण्यता के कारण कर्म में प्रवृत्त नही हो पाता है और यदि कर्म में प्रवृत्त हो गया तो भी उसके फल के प्रति आसक्त रहता है। आसक्ति के कारण वह अपने कार्य में सम्पूर्ण समर्पित भाव से प्रवृत्त नही हो पाता है। इसी कारण से वह अपने आत्मविकास तथा समाज व राष्ट्र के विकास में योगदान नही कर पाता है। अतः कर्मयोग, आत्मविकास व राष्ट्र के विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग ज्ञान योग के सभी हजारों गुणा अधिक प्रशस्त है क्योंकि ज्ञान योग की सिद्धि कर्मयोग के द्वारा ही होती है। यह ब्रह्म भी कर्मयोग से ही उत्पन्न होते है। कर्मयोग के बिना तो ज्ञानयोग की भी सत्ता नही है। अतः ज्ञानयोग में प्रवृत्त होने के लिये भी कर्म करना आवश्यक है। जिस प्रकार का हम कर्म करते है उसी तरह हमारे संस्कार बनते है और संस्कार हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्धारण करता है। अच्छे कर्म करने से अच्छे संस्कार तथा बुरे कर्म करने से बुरे संस्कार चित्त पर पड़ते है। अतः कर्म हमारे जन्मजन्मान्तरों से साथ रहते है। इस प्रकार वर्तमान क्षण में श्रेष्ठ कार्यो में प्रवृत्त होना आवश्यक है। गीता में कहा गया है कि मनुष्य बिना कर्म किये एक क्षण भी नही रह सकता है। अर्थात कर्म हमेशा हमारे साथ होता है तथा यह हमें शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से प्रभावित करता है। कर्म हमेशा संस्कारों के रूप में

संचित होकर अपना प्रभाव दिखाते है। मनुष्य के पास कर्म करने की स्वतंत्रता है। यह अच्छे व बुरे कर्म हो सकते है। मनुष्य के पास एक सुअवसर है उच्च अवस्था को प्राप्त करने का। इसलिये कर्म का महत्व समझकर, समय रहते हुये दिव्य कर्मो को दिव्य भावों के साथ करना आवश्यक है। आसक्ति रहित व निष्काम भाव से कर्म करने से कर्मयोग ही जीवन के उच्चतम लक्ष्य मोक्ष का साधन बन जाता है। इस प्रकार कर्मयोग का महत्व अत्यन्त अधिक है।

## उपसंहार तथा निष्कर्ष –

कर्मयोग, जीवन में वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने का श्रेष्ठ साधन है। हम जो भी कर्म करते है वे अच्छे व बुरे कर्म संस्कार रूप में एकत्र होते रहते है। ये संस्कार हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा जन्म–मरण को निर्धारित करते है। जब हम कर्मफल के प्रति अनासक्त भाव से कर्म करते है तो संस्कार नही बनते है। व कर्माशय में संस्कार नही रहने से मनुष्य इस जरा मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है इस प्रकार आसक्तियुक्त कर्म बन्धनकारक तथा अनासक्त कर्म मोक्षदायक होता है। अतः हमें कर्मफल के प्रति अनासक्त होकर तथा सम्पूर्ण कर्मो को ईश्वर के प्रति समर्पित होकर करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य कर्मयोग के द्वारा मोक्ष व कैवल्य को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार मनुष्य जब कर्मयोग में प्रवृत्त होता है तो वह आत्मोन्नति को प्राप्त करता है, तथा समाज व राष्ट्रहित में भी प्रवृत्त होता है। अतः न केवल आत्मोत्थान के लिये अपितु समाज व राष्ट्र की उन्नति व गौरव के लिये भी कर्मयोगी मनुष्यों की वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यकता है। अतः सभी मनुष्यों को कर्मयोग के मर्म को समझकर कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये।

सन्दर्भ सूची –


1. सरस्वती, विज्ञानानन्द (1998).योग विज्ञान, ऋषिकेशः योग निकेतन ट्रस्ट.पृ.सं.64
2. गोयन्दका,हरिकृष्णदास(2015) ईशादि नौ उपनिषद्,गोरखपुर : गीताप्रेस, पृ.सं.28,273,280.
3. गोयन्दका, हरिकृष्णदास (2013),योगदर्शन,गोरखपुर,गीताप्रेसः पृ.105–124
4. गोयन्दका,जयदयाल (2015) श्रीमदभगवतगीता,गोरखपुरःगीताप्रेस, पृ.47–60,84–98
5. भारद्वाज,ईश्वर (2017) मानव चेतना, नई दिल्लीः सत्यम पब्लिशिंग हाउस,पृ.148–153, 261–264.
6. स्वामी विवेकानन्द (2014), कर्मयोग,नागपुरः रामकृष्ण मठ,
7. रावत, अनुजा (2018) योग और योगी, नई दिल्ली, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, पृ.117–124.
8. उपाध्याय,बलदेव (1997) भारतीय दर्शन, वाराणसीः शारदा मन्दिर. पृ.62
9. बसन्त कुमार लाल (2001)समकालीन भारतीय दर्शन, दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 43–44.
10. सरस्वती, शिवानन्द (2001) कर्मयोग साधना, उत्तरांचलः दिव्य जीवन संघ.
11. आर्य,सतीश (2002) कर्म एवं कर्मफल मीमांसा, नई दिल्लीःवेद विश्वायतन.

12. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद (1993), भारतीय दर्शन की रूपरेखा,वाराणसीः मोती लाल बनारसीदास, पृ.71.
13. लोकमान्य तिलक, गीता रहस्य, पृ. 55,284
14. मनुस्मृति, 12/31,37
15. श्रीमदभागवदगीता – 2/47–48, 18/23,24,25, 4/16–19, 5/10,11,12
16. रामचरितमानस – 1/255/4
17. देवीभागवत – 6/10/9,13,14,12
18. पातंजल योग सूत्र – 4/7,20
19. अष्टयुपनिषद् – 2/53
20. महाभारत – 18/5
21. वाल्मीकि रामायण, आरण्य संख्या –29
22. कर्मो की फूलती– फलती खेती, अखण्ड ज्योति, वर्ष 52, अंक–7,पृ.1